An introduction to Durgasaptashati, (4th edition, 2013)
published by Mahavir Mandir Prakashan, Patna (Bihar)

दुर्गासप्तशती की भूमिका

पं. भवनाथ झा
एम. ए. (संस्कृत) एवं साहित्याचार्य,
प्रकाशन एवं शोध पदाधिकारी
महावीर मन्दिर, पटना
(बिहार)

महावीर मन्दिर प्रकाशन, पटना

An introduction to Durgasaptashati, (4th edition, 2013) published by Mahavir Mandir Prakashan, Patna with Chandi stava by Prithvidhara and Kumari-pujan-vidhi written and translated into Hindi by Bhavanath Jha

नाम – **पं. भवनाथ झा**

पितृनाम – पं. अमरनाथ झा

जन्मस्थान – हटाढ़ रुपौली, झंझारपुर, मधुबनी (बिहार)

जन्मतिथि – 23 सितम्बर, 1968 ई.

शिक्षा – एम. ए. (संस्कृत), साहित्याचार्य

प्रकाशित रचना – **बुद्धचरितम्** (अश्वघोष कृत महाकाव्य के अनुपलब्ध अंश का संस्कृत भाषा में काव्यमय अनुवाद), महावीर मन्दिर प्रकाशन से 2013 में प्रकाशित।

मातृभाषा मैथिली में दर्जनों कथाओं का विभिन्न पत्रिकाओं एवं संग्रहों में प्रकाशन।

सम्पादन – (1) **अगस्त्य-संहिता** (2) **दुर्गासप्तशती** (3) म. म. परमेश्वर झा कृत **यक्षसमागमम्** (4) म. म. रुद्रधर कृत **पुष्पमाला** (5) म.म. पशुपतिकृत **व्यवहाररत्नावली** (6) म.म. रुचिपतिकृत **नाह्निदत्तपञ्चविंशतिकाविवरणम्**।

धर्मायण, महावीर मन्दिर, पटना से प्रकाशित धार्मिक एवं सांस्कृतिक शोधपरक पत्रिका।

विशेष दक्षता – मिथिलाक्षर एवं देवनागरी की पाण्डुलिपियों से सम्पादन का विशेष अनुभव।

सम्प्रति – प्रकाशन एवं शोध प्रभारी, महावीर मन्दिर, पटना

दुर्गासप्तशती की भूमिका

शक्ति-पूजन की परम्परा में श्रीदुर्गासप्तशती का अनन्य स्थान है। वासन्त नवरात्र हो या शारदीय, माँ दुर्गा की पूजा के साथ दुर्गासप्तशती में निहित उनकी महिमा का पाठ घर घर में श्रद्धापूर्वक होता है। यद्यपि यह दुर्गासप्तशती मार्कण्डेय-पुराण का अंश है; किन्तु यह सदियों से अपने आकर-ग्रन्थ से पृथक् अस्तित्व बना चुका है। इसकी एक ११वीं शती की पाण्डुलिपि नेपाल से मिली है। कात्यायनी तन्त्र में इसके मन्त्र-विभाग का उल्लेख मिलता है। इसके सात सौ मन्त्रों का पारायण, वाचन और जप सदियों से कार्यसिद्धि एवं साधना के लिए होता आया है। इतना ही नहीं, इस ग्रन्थ का लेखन भी देवी दुर्गा की उपासना के रूप में सदियों से प्रतिष्ठित रहा है।

दुर्गासप्तशती की परम्परा सम्पूर्ण भारत में व्याप्त है। दक्षिण भारत में भी इसकी कई टीकाओं की रचना है। भारत-विश्रुत वैयाकरण नागेश भट्ट ने भी इस पवित्र-ग्रन्थ पर अपनी टीका लिखी है; विभिन्न भाषाओं में इसके गद्यानुवाद एवं पद्यानुवाद हुए हैं। इसकी प्रमुख छह संस्कृत टीकाओं का संकलन भी बीसवीं शती के प्रारम्भ में ही औदीच्य सहस्रज्ञातीय व्यङ्कटरामात्मज हरिकृष्णशर्मा के सम्पादन में खेमराज वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई से प्रकाशित हो चुका है। इसमें निम्नलिखित टीकाएँ हैं– 1.**गुप्तवती** – भास्कर राय दीक्षित द्वारा यह टीका लिखी गयी है। इनके पिता का नाम गम्भीर राय था। ये मूलतः गुजरात के थे, किन्तु काशी में निवास करते थे। डा. गोपीनाथ कविराज ने 'काशी की सारस्वत साधना' ग्रन्थ में इनका काल 18वीं शती का पूर्वार्द्ध माना है। ये त्रिपुरसुन्दरी के उपासक और महान् तन्त्र–शास्त्री थे। 2. **चतुर्धरी**– इसके टीकाकार चतुर्धर मिश्र हैं। 3. **शान्तनवी**– इसके टीकाकार शन्तनु चक्रवर्ती हैं, जो तोमर वंश के शासक उद्धरण चक्रवर्ती के पुत्र थे। 4. **नागोजीभट्टी**– व्याकरण–शास्त्र के चर्चित टीकाकार नागेशभट्ट द्वारा यह टीका लिखी गयी है। ये महाराष्ट्रीय थे, किन्तु काशी में निवास करते थे। इनका काल 18वीं शती का प्रथम पाद है। 5. **जगच्चन्द्रचन्द्रिका**– भगीरथ द्वारा यह टीका लिखित है। भागीरथ के पिता बलभद्र पण्डित कूर्माचल के निवासी थे। इन्होंने कण्वगोविन्द कृत सप्तशती मन्त्र विभाग के आधार पर यह टीका लिखी है। 6. **दंशोद्धार**– ढुण्ढिराज भट्ट के पुत्र राजाराम द्वारा यह टीका लिखी गयी है। इनमें से केवल गुप्तवती टीका अर्गला,

कीलक, कवच, सप्तशती एवं तीनों रहस्यों पर है। अन्य सभी टीकाएँ केवल सप्तशती पर हैं। अर्गला, कील एवं कवच पर प्रदीप टीका प्रकाशित है, किन्तु इनका परिचय अज्ञात है। इन संस्कृत टीकाओं के अवलोकन से इसके विभिन्न पाठ उपलब्ध होते हैं। ये पाठ वस्तुतः क्षेत्र-विशेष की परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें कहीं-कहीं शब्दों का अन्तर है तो कहीं श्लोकार्द्ध या एक श्लोक का अन्तर है।

महावीर मन्दिर से प्रकाशित इस संस्करण में इन पाठान्तरों को भी संकलित कर इसे सार्वजनीन बनाने का प्रयास किया गया है। इसके व्याख्याकार स्व० कृष्णचन्द्र मिश्र ने अथक परिश्रम कर इसके मूल श्लोकों का पदच्छेद कर जहाँ एक ओर असंस्कृतज्ञ के द्वारा भी इस के पाठ को अत्यन्त सुगम बना दिया है, वहीं संस्कृतज्ञों के लिए भी पाठ के समय ही अर्थानुसन्धान की गति बढ़ाने में सुविधा प्रदान की है। इसके लिए हम उनके प्रति आभारी हैं। स्व० मिश्रजी ने इसके साथ अन्वय भी अलग से लिखा था; किन्तु अन्वय के क्रम में ही हिन्दी शब्दार्थ रहने के कारण उसे अनिवार्य नहीं समझकर विस्तार के भय से छोड़ दिया गया है। प्रत्येक श्लोक का अनुवाद भी पृथक् से दिया गया है तथा श्लोकों में निहित गूढार्थ स्पष्ट किये गये हैं। प्रस्तुत चतुर्थ संस्करण में पूर्व संस्करण को यथावत् रखा गया है। कहीं कहीं टिप्पणी देकर इसे अधि क उपयोगी बनाया गया है।

दुर्गासप्तशती में मन्त्र संख्या एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। इसके प्रत्येक मन्त्र के आगे-पीछे अभीष्ट मन्त्र का जप कर इसका सम्पुट पाठ भी विशेष साधना के लिए किया जाता है तथा इसके प्रत्येक मन्त्र से हवन भी किये जाते हैं। शतचण्डी, लक्षचण्डी आदि महायज्ञों में इन्हीं मन्त्रों से आहुति दी जाती है। इसके लिए प्रत्येक मन्त्र के अन्त में विराम होना आवश्यक है, किन्तु व्याख्या की दृष्टि से एक मन्त्र एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं कि उन्हें अलग नही किया जा सकता। यह स्थिति प्रायशः सभी आर्ष-ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होती है। प्रस्तुत संस्करण के सम्पादन में यह एक समस्या थी कि श्लोकों का समायोजन मन्त्र संख्या की दृष्टि से किया जाए या व्याख्या की दृष्टि से अन्वय को देखते हुए किया जाए। इस विषय में हमने भक्तों की सुविधा का ध्यान रखते हुए मन्त्रों का समायोजन तो मन्त्रसंख्या की दृष्टि से किया है; किन्तु व्याख्या पूर्ववत् अन्वय की दृष्टि से रखी गयी है, जिससे हवन या अन्य पुरश्चरण करते समय मन्त्राङ्क में असुविधा न हो।इस कारण कई स्थल पर मूल के पहले ही व्याख्या आ जाने की स्थिति हो गयी है।

इस संस्करण में भी भगवती दुर्गा की सबसे प्राचीन उपलब्ध पूजा-पद्धति का भी संकलन किया गया है, जिसे हमने बौधायन गृह्यसूत्र से लिया है। इसके तृतीय खण्ड (प्रश्न) के तीसरे अध्याय में दुर्गापूजा की विशुद्ध वैदिक पद्धति उपलब्ध है, जो एक ओर दुर्गापूजा की प्राचीनता सिद्ध करती है, तो दूसरी ओर इस पूजा की सात्त्विक-विधि का प्रतिपादन करती है। यह विधि प्रामाणिक होने के साथ-साथ कर्मकाण्ड की जटिलता से दूर होने के कारण श्रद्धालुओं द्वारा प्रतिदिन घर में भी करने योग्य है। श्रद्धालुओं के लिए यह उपहार यहाँ प्रस्तुत

किया गया है। सम्पादन के क्रम में इसमें कलशस्थापन-विधि तथा अग्निस्थापन-विधि जोड़कर इसे उपयोगी बनाया गया है। अग्निस्थापन की विधि प० श्री जटेश झा के सौजन्य से प्राप्त है।

दुर्गासप्तशती के अंग-स्तोत्र

दुर्गासप्तशती के अन्तर्गत कवच, अर्गला एवं कीलक के प्रदीप टीकाकार ने देवीकवच के प्रथम मन्त्र की टीका में सप्तशती के अंगों की विवेचना की है और इन अंगों का पाठ आवश्यक मानते हुए कात्यायनी तन्त्र के वचन को उद्धृत किया है कि जैसे आत्मा अंगहीन होकर किसी भी कार्य में सक्षम नहीं होता है, उसी प्रकार छह अंगों से विहीन दुर्गासप्तशती पाठ की स्थिति होती है–

अङ्गहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः।
अङ्गषट्कविहीना तु तथा सप्तशतीस्तुतिः।।

इसी क्रम में कात्यायनी तन्त्र में उक्त रावण आदि की कथा का उल्लेख किया गया है कि इन्होंने अङ्गहीन सप्तशती का पाठ किया था अतः वे पराभूत हुए। कात्यायनी तन्त्र में अर्गला, कीलक, कवच, प्राधानिक रहस्य, मूर्ति-रहस्य एवं वैकृतिक-रहस्य इन छह स्तुतियों को सप्तशती का अंग माना गया है।(कवच के प्रथम मन्त्र की प्रदीप व्याख्या में उद्धृत)

मार्कण्डेय-पुराण के अन्तर्गत तेरह अध्याय के श्लोकों का सात सौ मन्त्रों के रूप में विभाग सप्तशती का मुख्य अंग है, किन्तु इसके कम से कम तीन अन्य अंग प्रमुख हैं। इन तीनों के पाठ के दो क्रम हैं। एक क्रम में कवच, अर्गला एवं कीलक का क्रमिक पाठ होता है। दूसरे क्रम में अर्गला, कीलक एवं कवच का पाठ होता है। इन तीनों अंगों के सम्बन्ध में दुर्गापटल में एक कथा का उल्लेख किया गया है। बृहज्ज्योतिषार्णव के अष्टम स्कन्ध में उपासनास्तबक के दुर्गोपासनाकल्पद्रुमाध्याय में इस कथा का उल्लेख इस प्रकार है कि एक बार रावण आकाशमार्ग से कहीं जा रहा था। उसने पृथ्वी पर किसी पण्डित को दुर्गा देवी की आराधना करते हुए सुना। रावण ने उस पण्डित से पूछा कि आप क्या कर रहें हैं। पण्डित ने कहा कि मैं भगवती दुर्गा की उपासना कर रहा हूँ, इससे मुझे राज्य की प्राप्ति होगी। रावण ने गर्व से कहा कि इस समय मैं तीनों लोकों का राजा हूँ। मैं आपको राज्य देता हूँ आप मुझे यह पुस्तक दें। रावण से राज्य प्राप्त कर उस पण्डित ने रावण को वह पुस्तक सौंप दी। रावण अर्गला, कीलक आदि स्तोत्रों को सामान्य स्तोत्र समझकर उन्हें छोड़कर सप्तशती का पाठ करने लगा। इस प्रकार के पाठ से अभिचार कर्म होने के कारण देवताओं का नाश हुआ।

बाद में जब अरुण नामक राक्षस तीनों लोकों को पीड़ा देने लगा तब देवता भी अरुण के नाश के लिए इसी प्रकार अभिचार करने लगे, जिससे भगवती अप्रसन्न हो गयी। इस प्रकार अभिचार अर्थात् दूसरे की हानि के लिए साधना करने से देवी अप्रसन्न हो जाती हैं, यह भी यहाँ अभिप्रेत है। तब देवता लोग ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के पास गये। भगवान् शंकर ने

उन्हें कवच, अर्गला एवं कीलक के साथ सप्तशती का उपदेश किया। इससे देवी प्रसन्न हुई और उन्होंने भ्रामरी का रूप धारण कर अरुण का संहार किया। इस प्रकार सप्तशती के अंग के रूप में इस स्तुतियों का समावेश हुआ।

इसी स्थल पर आगे कहा गया है–

जय त्वं च जयन्ती च श्लोकद्वितयमर्गलम्।
मधुकैटभविद्रावि विधात्रीति नवार्णकम्।।८१।।

अर्थात् **जय त्वं देवि चामुण्डे** इत्यादि एवं **जयन्ती मङ्गला काली** इत्यादि दो मन्त्र अर्गला हैं तथा **मधुकैटभविद्रावि** इत्यादि नवार्ण-मन्त्र हैं। यहाँ नागेशभट्ट ने **धूम्राक्षस्य च मर्दिनी॰** पर्यन्त नवार्ण-मन्त्र माना है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश क्रमशः कवच, अर्गला एवं कीलक मन्त्रों के प्रवक्ता है। इस स्थल से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अर्गला का प्रथम मन्त्र **जय त्वं देवि चामुण्डे** इत्यादि है।

कीलकं शंकरप्रोक्तं कवचं ब्रह्मणा कृतम्।
अर्गलं विष्णुना प्रोक्तमेतत्त्रितयमुत्तमम्।।८२।।

इसी स्थल पर अर्गला, कील एवं कवच के क्रमशः पाठ का विधान किया गया है–

अर्गलाकीलकं चादौ पठित्वा कवचं पठेत्।
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं क्रम एष शिवोदितः।।

मिथिला एवं बंगाल में यहीं क्रम परम्परा से प्राप्त है। अतः इस संस्करण में इसी क्रम का समावेश किया गया है। इसका विस्तृत विवेचन आगे किया गया है।

सप्तशती-मन्त्रों का सबसे उत्कृष्ट माहात्म्य है कि इससे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं। इसके प्रथम अध्याय में राजा सुरथ भोगार्थी हैं, वे राज्य-च्युत होकर पुनः राज्य-प्राप्ति के लिए साधना के मार्ग पर प्रवृत्त हुए हैं, अतः उन्हें देवी के वरदान से राज्य की तो प्राप्ति होती है, किन्त मोक्ष नहीं मिलता। वे पुनर्जन्म लेकर भी सावर्णि मनु होते हैं। इसके विपरीत समाधि नामक वैश्य ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष के लिए साधना करते हैं, तो उन्हें मोक्ष ही मिलता है। आचार्य शंकर ने भी देवी-उपासना का यही माहात्म्य लिखा है-

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

दुर्गासप्तशती में देवी का यह माहात्म्य तीन चरितों में निबद्ध है। प्रथम चरित की कथा की पृष्ठभूमि सृष्टि से पूर्व की है। भगवान् विष्णु एकार्णव में शयन कर रहे हैं- **एकार्णवे हि शयनात्ततः स ददृशे च तौ॥** चारों ओर जल ही जल है। वह कल्पान्त की स्थिति है। उसी सृष्टि-पूर्व पृष्ठभूमि का वर्णन ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में आया है कि उस समय न सत् था न असत्, न तो कोई लोक था न आकाश। किसने किसकी रक्षा के लिए किसे ढँका था? चारों ओर अगम अथाह जल ही जल था। उद्धरण इसी पृष्ठभूमि में

मधु और कैटभ का जन्म हुआ। उसके संहार के लिए ब्रह्मा ने विष्णु को जगाने की चेष्टा की; जिसके लिए उन्हें योगनिद्रा देवी की स्तुति करनी पड़ी। इस प्रकार प्रथम चरित सृष्टि के उद्रेक में देवी की भूमिका की श्लाघा करता हुआ उन्हें सृष्टिकर्त्री के रूप में स्थापित करता है। प्रथम चरित में ब्रह्मा एवं विष्णु इन्हीं दो देवों की चर्चा है।

मध्यम चरित की पृष्ठभूमि में देवी का विकसित स्वरूप है। सृष्टि का विकास हो चुका है। सूर्य, इन्द्र, अनिल, अग्नि, वरुण आदि देव अपने-अपने कार्यों में संलग्न हो चुके हैं। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल आदि लोकों की भी स्थापना हो चुकी है। इस समय महिषासुर सब देवों का अधिकार छीन लेता है- **सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च। अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति।** देवों का स्वर्ग भी छिन जाता है। इस स्थिति में सभी देव अपनी-अपनी शक्ति को एक कर अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र देकर एक नारी शरीर की सृष्टि करते हैं। यहाँ देवी एकशरीरा है। यह देवी महिषासुर का विनाश कर देवताओं को अपने-अपने स्थान पर स्थापित होकर कार्य करने का अवसर देती हैं। प्रथम चरित से उत्तरोत्तर विकसित अवस्था की कथा मध्यम चरित में है।

उत्तर चरित की पृष्ठभूमि पूर्ण विकसित है। यहाँ अवतारवाद का स्पष्ट उल्लेख है। एक देवी से अनेक देवियों की उत्पत्ति का वर्णन है। देवी वचन देती हैं कि जब-जब पृथ्वी पर कोई विपत्ति आयेगी, मैं अवतार लेकर रक्षा करूँगी। सप्तशती के एकादश अध्याय में जन्म-जन्मान्तर की कथा है; अवतार ग्रहण का उल्लेख है।

इस प्रकार, दुर्गासप्तशती का यह क्रम सूक्ष्म से स्थूल जगत् की ओर अग्रसर है। फलत: अंग के रूप में अर्गला, कीलक एवं कवच मन्त्रों का क्रम भी सूक्ष्म से स्थूल की ओर होना उचित है। कवच मन्त्र में स्थूल शरीर की रक्षा के लिए प्रार्थना की गयी है। अत: उसका पाठ कीलक के बाद होना चाहिए। कीलक मन्त्र ध्यान को केन्द्रित करने के लिए है। कीलक मन्त्र के केवल प्रथम श्लोक में भगवान् शंकर की स्तुति की गयी है शेष फलश्रुति है। ऐसा इसलिए कि ध्यान केन्द्रित हो। अर्गला पापनाशन मन्त्र है 'चामुण्डा-तन्त्र एवं चिदंबर-संहिता में कहा गया है- **'अर्गलं दुरितं हन्ति।'**

अत: साधक पहले किए गये पाप के नाश के लिए अर्गला का पाठ करें, तब ध्यान केन्द्रित करने के लिए कीलक का पाठ करें और अन्त में कवच का पाठ करें। यह इस क्रम का रहस्य है।

अर्गला-स्तोत्र का स्वरूप

सप्तशती के अंग के रूप में पठित अर्गला का आरम्भ भी कई दृष्टि से विचारणीय है। १८६० ई० में आगरा से प्रकाशित ब्राह्मावधूत श्री सुखानन्दनाथ कृत शब्दार्थ-चिन्तामणि शब्दकोष में 'अर्गला' शब्द की व्याख्या में उल्लिखित है:- **दुर्गापाठादौ पाठ्ये देवीस्तोत्रविशेषे। यथा । मार्कण्डेय उवाच। ब्रह्मन् केन प्रकारेण दुर्गामाहात्म्यमुत्तमम्। शीघ्रं सिद्ध्यति**

तत्सर्वं कथयस्व महाप्रभो। ब्रह्मोवाच। अर्गलं कीलकं चादौ पठित्वा कवचं पठेत्। जपेत् सप्तशतीं पश्चात् क्रम एष शिवोदित इति।

राजा राधाकान्त देव ने भी 'शब्दकल्पद्रुम' में 'अर्गला' शब्द की व्याख्या में इसे समग्र रूप से उद्धृत किया है:- **मार्कण्डेय उवाच। ब्रह्मन् केन प्रकारेण दुर्गा माहात्म्यमुत्तमम्। शीघ्रं सिद्ध्यति तत्सर्वं कथयस्व महाप्रभो।। ब्रह्मोवाच। अर्गलं कीलकं चादौ जपित्वा कवचं पठेत्। जपेत् सप्तशतीं पश्चात् क्रम एष शिवोदितः।। अर्गलं दुरितं हन्ति कीलकं फलदं तथा। कवचं रक्षते नित्यं चण्डिका त्रितयं दिशेत्।। अर्गलं हृदये यस्य स चानर्गलवाक् सदा। कीलकं हृदये यस्य वशकीलितमानसः।। कवचं हृदये यस्य स वज्रहृदयः खलु। ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं विनिश्चित्यापि चेतसा।। इत्यादि। तदाद्यश्लोको यथा,- "जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतापहारिणि! जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते।।" तस्य शेषश्लोको यथा,- "इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः। सप्तशतीं समारभ्य वरमाप्नोति सम्पदः।**

तारानाथ तर्कवाचस्पति ने भी 'वाचस्पत्यम्' में अर्गला की व्याख्या उपरिवत् की है। ये उद्धरण इन प्रारम्भिक श्लोकों की प्रामाणिकता पुष्ट करते हैं। मिथिला में म० म० परमेश्वर झा ने दुर्गासप्तशती में इस स्थल को निम्न प्रकार से उद्धृत किया है:-

मार्कण्डेय उवाच

ब्रह्मन् केन प्रकारेण दुर्गा माहात्म्यमुत्तमम्।
शीघ्रं सिद्ध्यति तत्सर्वं कथयस्व महामते।।

ब्रह्मोवाच

अर्गलं कीलकं चादौ जपित्वा कवचं पठेत्।
जपेत् सप्तशतीं पश्चात् क्रम एष शिवोदितः।।
अर्गलं दुरितं हन्ति कीलकं फलदं भवेत्।
कवचं रक्षते नित्यं चण्डिका त्रितयं तथा।।
अर्गलं हृदये यस्य तथानर्गलवागसौ।
भविष्यतीति निश्चित्य शिवेन कथितं पुरा।।
कीलकं हृदये यस्य स कीलितमनोरथः।
भविष्यति न सन्देहो नान्यथा शिवभाषितम्।।
कवचं हृदये यस्य स वज्रकवचः खलु।
भविष्यतीति निश्चित्य ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।।

यद्यपि मिथिला में यह अंश अर्गला के साथ ही पठित है किन्तु यह सप्तशती की पाठ-विधि है; अर्गला का अंश नहीं। इसलिए प्रस्तुत संस्करण में इसे पृथक् कर दिया गया है। अर्गला मन्त्र में अनेक ऐसे श्लोक हैं, जो गीता प्रेस के पाठ में नहीं हैं। उन्हें प्रस्तुत संस्करण में पाद टिप्पणी में रखा गया है।

पाठविधि

कलियुग में श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारतान्तर्गत विष्णुसहस्रनाम, दुर्गासहस्रनाम एवं सप्तशती-स्तोत्र इन चारों का विशेष माहात्म्य कहा गया है–

भीष्मपर्वणि या गीता सा प्रशस्ता कलौ युगे।
विष्णोर्नामसहस्राख्यं महाभारतमध्यमम्।।
चण्ड्याः सप्तशतीस्तोत्रं तथा नामसहस्रकम्।

शारदीय एवं वासन्त नवरात्र में इस दुर्गासप्तशती का पाठ विशेष श्रद्धा के साथ किया जाता है। अन्य दिनों में भी शुभ अवसरों पर तथा संकट की घड़ी में भी समान रूप से इसका अनुष्ठान किया जाता है।

सप्तशती में कुल ७०० मन्त्र हैं, किन्तु यदि श्लोकों की संख्या देखी जाय तो ५६८ के लगभग होते हैं।

इस सप्तशती के पाठ का उत्तम कल्प यह है कि सम्पूर्ण पाठ कण्ठस्थ हो, पाठ के साथ ही अर्थ भी समझते रहें तथा अञ्जलि-मुद्रा में इसका पाठ करें। वैकृतिक रहस्य में कहा गया है कि **ततः कृताञ्जलिपुटः स्तुवीत चरितैरिमैः**। इस पाठ में अध्याय के अन्त में भी विराम नहीं करना उत्तम पक्ष है।

दूसरे कल्प में पुस्तक देखकर श्रद्धापूर्वक अंगों के साथ सम्पूर्ण सप्तशती का पाठ करें। अध्याय के अन्त में विराम दिया जा सकता है, किन्तु वहाँ भी **इति**, **वध**, एवं **अध्याय** इन तीन शब्दों के उच्चारण का निषेध किया गया है। इनके उच्चारण से क्रमशः लक्ष्मीनाश, कुलनाश और प्राणनाश की बात कही गयी है। अतः **महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः** इस मन्त्र से प्रत्येक अध्याय के अन्त में जल समर्पित करने की परम्परा देखी जाती है।

सप्तशती के तीनों चरितों के आरम्भ में ध्यान एवं विनियोग का उल्लेख गीताप्रेस के संस्करणों में आया है। किन्तु जो साधक सम्पूर्ण दुर्गासप्तशती का पाठ करते हैं अथवा सम्पुट पाठादि विशेष साधना करते हैं, उन्हें सप्तशती के बीच में कहीं भी ध्यान एवं विनियोग का पाठ कर व्यवधान करना उचित नहीं है। इस संस्करण में ध्यान एवं विनियोग ऐसे भक्तों के लिए दिए गये है, जो आगे कही गयी पद्धति को अपना कर खण्डशः पाठ करते हैं।

पुस्तक देखकर विशेष रूप से संस्कृत नहीं जाननेवालों के लिए सभी अंगों के साथ इसका पाठ समय-सापेक्ष हो जाता है। अतः इसके विभिन्न प्रकार के पाठ की रूपरेखा उपलब्ध होती है। दुर्गासप्तशती के गुप्तवती टीकाकार ने एक पक्ष का उल्लेख किया है कि एक दिन में एक चरित का पाठ कर तीन दिनों में एक आवृत्ति पाठ करें। इस पद्धति से प्रत्येक दिन अध्यायों की संख्या इस प्रकार होगी–

प्रथम दिन–	प्रथम अध्याय
द्वितीय दिन –	द्वितीय से चतुर्थ अध्याय

तृतीय दिन–	पञ्चम से त्रयोदश अध्याय

प्रत्येक दिन सप्तशती के अंगों का पाठ समान रूप से होगा। गुप्तवती टीकाकार ने केरल में इस पद्धति को प्रसिद्ध माना है।

इसी प्रकार सप्ताह पारायण का भी विधान किया गया है। इस पाठ में क्रमशः १, २, १, ४, २, १, २ अध्याय प्रतिदिन होंगे।

प्रथम दिन	प्रथम अध्याय
द्वितीय दिन	द्वितीय एवं तृतीय अध्याय
तृतीय दिन	चतुर्थ अध्याय
चतुर्थ दिन	पंचम से अष्टम अध्याय
पञ्चम दिन	नवम एवं दशम अध्याय
षष्ठ दिन	एकादश अध्याय
सप्तम दिन	द्वादश एवं त्रयोदश अध्याय

गुप्तवती टीकाकार ने इस सप्ताह पारायण को अधिक प्रसिद्ध माना है, किन्तु नवरात्र के क्रम में तीन दिन में एक आवृत्ति का कल्प उपयुक्त है, क्योंकि इससे एक नवरात्र में तीन आवृत्ति हो जाती है।

कात्यायनी-तन्त्र में इस सप्तशती के अनेक काम्य प्रयोगों का उल्लेख किया गया है।

होमे स्वाहान्तिमा एते पूजायां तु नमोऽन्तिमाः।
तर्पणे तर्पयाम्यन्ता ऊहनीया बुधैर्मताः।।

हवन– प्रत्येक मन्त्र के अन्त में **'स्वाहा'** पद जोड़कर हवन किया जाता है।

पूजन– प्रत्येक मन्त्र के अन्त में **'नमः'** पद जोड़कर पूजन किया जाता है।

तर्पण–प्रत्येक मन्त्र के अन्त में **'तर्पयामि'** पद जोड़कर पितरों को जल दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की कामना से दुर्गासप्तशती के पुरश्चरण का विधान कात्यायनी तन्त्र में इस प्रकार किया गया है।

वृद्धिपाठ

यह नवरात्र में विशेष प्रकार का अनुष्ठान है। परम्परानुसार जिस वर्ष नवरात्र में पूरे नौ दिनों तक पूजा होती है, उस वर्ष यह अनुष्ठान किया जाता है। इसमें तिथि के अनुसार सप्तशती की आवृत्ति होती है, अर्थात् प्रतिपदा को एक आवृत्ति पाठ होता है तो नवमी के दिन नौ आवृत्ति। एक से अधिक आवृत्ति के पाठ में अर्गला, कीलक, कवच आदि का एक बार पाठ करने की परम्परा है।

सम्पुट पाठ

प्रत्येक मन्त्र के पहले और बाद में विशेष सिद्ध मन्त्र जोड़कर सम्पुट पाठ किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक मन्त्र के बीच में दो बार विशेष मन्त्र का जप होता है। कात्यायनी तन्त्र

में अनेक सिद्ध मन्त्रों का उल्लेख किया गया है, जिन मन्त्रों से सम्पुट पाठ करने पर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है।

१. अपमृत्यु का निवारण

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

२. कामना-सिद्धि

जातवेदसे सुनवामसोममरातीयतो निदहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।।

३. कार्यसिद्धि

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते।

४. कामना सिद्धि

करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः।

५. अभीष्ट वर की प्राप्ति

एवं देव्याः वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः।
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः।।

६. आपदाओं का निवारण

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता।।

७. महामारी शान्ति

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।।

८. स्वास्थ्य एवं विद्याप्राप्ति

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिताह्याश्रयतां प्रयान्ति।।

९. विद्याप्राप्ति एवं वाणी सम्बन्धी विकार का नाश

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा।।

१० सभी बाधाओं की शान्ति के साथ उन्नति के लिए-

सर्वाबाधा विनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः।।

केवल मन्त्र का ही दस हजार जप, एक हजार हवन, एक सौ मार्जन एवं दस बार तर्पण का पुरश्चरण कर अनेक लोग लाभान्वित हुए हैं।

११. शत्रु से रक्षा के लिए-

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वयां कार्यमस्मद् वैरिविनाशनम्।।

इस मन्त्र से भी पूर्वोक्त पुरश्चरण अत्यन्त लाभदायक है।

इन मन्त्रों से सम्पुट पाठ या केवल इन मन्त्रों का एक लाख, दस हजार, हजार या सौ बार जप भी फलदायक कहा गया है।

सप्तशती के टीकाकार नागेश भट्ट और गुप्तवती टीकाकार भास्कर राय दीक्षित ने कुछ बीज-मन्त्रों से सम्पुट पाठ करने का भी उल्लेख किया है। ये प्रयोग एवं अनुष्ठान ऐसे लोगों के लिए हैं, जिन्होंने शक्ति-पूजन की परम्परा में विधिवत् दीक्षा ली है। जो दीक्षित नहीं हैं, वे दुर्गासप्तशती को एक स्तोत्र-ग्रन्थ मानकर निर्विकार भाव से माँ की आराधना मात्र करने के अधिकारी हैं।

दुर्गासप्तशती में चार स्थलों पर स्तुतियाँ हैं। इन स्तुतियों का पाठ अत्यन्त फलदायक है।

१. प्रथम अध्याय मन्त्र सं० ७२ से ८७ तक

२. चतुर्थ अध्याय सम्पूर्ण

३. पञ्चम अध्याय मन्त्र सं० ८ से ८२ तक

४. एकादश अध्याय सम्पूर्ण

इन स्तुतियों का पाठ श्रद्धा-पूर्वक करें।

सप्तशती से सम्बद्ध अनेक प्रकार के प्रयोग एवं आराधना-विधि विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, किन्तु ये प्रयोग पुस्तक से सीखकर करने के स्थान पर समर्थ गुरु के आदेश से उनके निदेशन में करना ही श्रेयस्कर है।

वासन्त नवरात्र
२००६ ई०

भवनाथ झा

मालाबन्ध-

प्राचीन काल में संस्कृत के कवियों ने अपनी प्रतिभा के बल पर अनेक चमत्कारपूर्ण काव्यों की रचना की है। जहाँ एक ओर इन्होंने ध्वनि, रस, अलंकार, गुण रीति आदि का समायोजन कर भाव के स्तर पर उत्कृष्ट काव्यों का प्रणयन किया है वहीं वर्णों के विशिष्ट समायोजन से चमत्कारपूर्ण चित्रकाव्यों की रचना में पीछे नहीं रहे हैं। इन चित्रकाव्यों को शास्त्रीय रीति से लिखने पर किसी वस्तु की आकृति बन जाती है। पद्मबन्ध, खड्गबन्ध, मुरजबन्ध आदि ऐसे चित्रकाव्य हैं, जिनका प्रतिपादन संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में मिलते है। महाकवि माघ एवं भारवि ने भी क्रमशः शिशुपालवध एवं किरातार्जुनीय महाकाव्यों में इन चित्रकाव्यों का प्रयोग किया है। इन्हीं चित्रकाव्यों में से एक मालाबन्ध काव्य भी है। इसे हमने काव्यप्रकाश की एक प्राचीन पाण्डुलिपि से ली है।

प्रस्तुत चित्र बारह फूलों की एक माला का है। ऊपर से दाहिनी ओर इसका प्रवाह है। प्रत्येक फूल में कर्णिका एवं चार दल हैं। पाँचों स्थान में पाँच अक्षर लिखे हुए हैं। यहाँ अक्षरों का प्रवाह इस प्रकार है – ता रा या रा ज रा
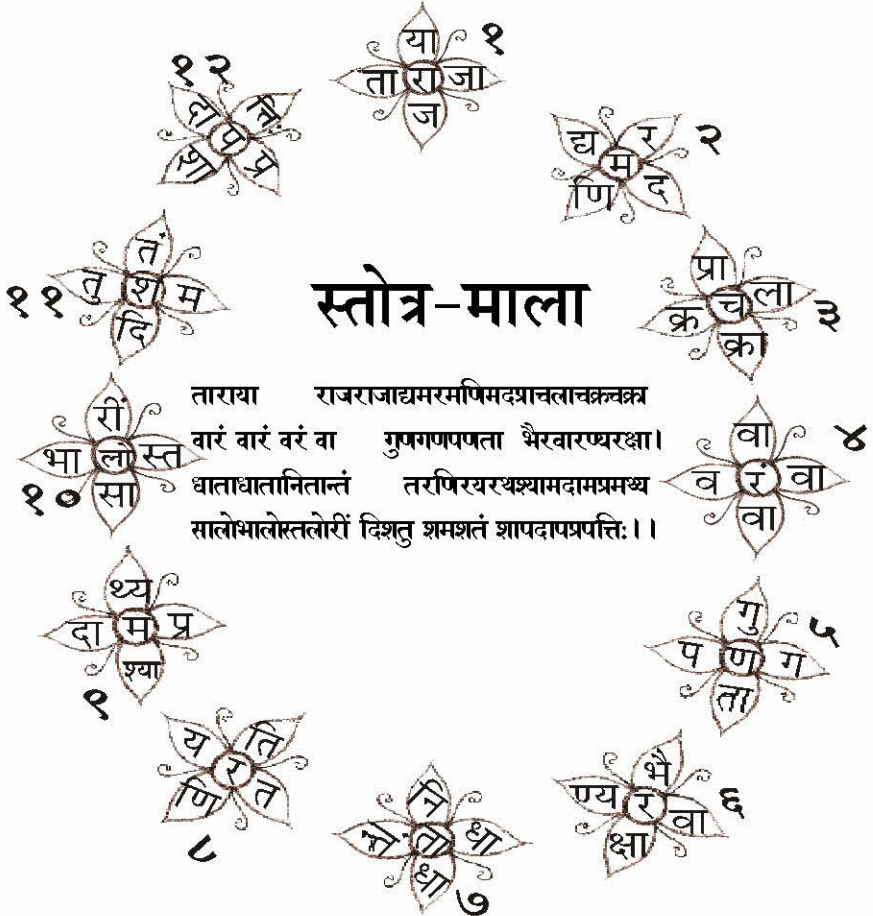
आचार्य पृथ्वीधरकृतम्

चण्डी-स्तोत्रम्

(लघुसप्तशती-स्तोत्र)

शक्ति-पूजन की परम्परा में आचार्य पृथ्वीधर का नाम आदर के साथ लिया जाता है। परम्परानुसार इन्हें आदिशंकराचार्य का शिष्य माना जाता है; किन्तु इनकी रचनाओं के पुष्ट अन्तःसाक्ष्य इन्हें शम्भुनाथ अथवा सिद्धिनाथ का शिष्य प्रमाणित करता है। 'अर्धत्र्यम्बक मठिका' काँगड़ा नगर में वज्रेश्वरी के जालन्धर-पीठ में प्रतिष्ठित थी। इसी पीठ के आचार्य सिद्धिनाथ थे। इन्ही का दूसरा नाम शम्भुनाथ भी था। पृथ्वीधर ने अपनी प्रसिद्ध रचना भुवनेश्वरी-स्तोत्र में अपने गुरु का नाम आदर के साथ लिया है। प्रस्तुत चण्डीस्तोत्र में भी अन्तिम श्लोक में आचार्य पृथ्वीधर ने शम्भुनाथ अथवा सिद्धिनाथ को अपना गुरु माना है। आचार्य अभिनवगुप्त ने भी सिद्धिनाथ को अपना गुरु कहा है। ये सब काश्मीरी शैवागम के प्रतिष्ठित स्तम्भ हैं। इनका काल दशम शती का उत्तरार्द्ध माना गया है।

आचार्य पृथ्वीधर ने प्रस्तुत चण्डी स्तोत्र में दुर्गासप्तशती में वर्णित भगवती दुर्गा के माहात्म्य का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में सारगर्भित रूप में किया है।

यत्कर्मधर्मनिलयं कलयन्ति तज्ज्ञा
यज्ञादिकं तदखिलं सफलं त्वयैव।
त्वं चेतना यत इति प्रविचार्य चित्ते
नित्यं त्वदीयचरणौ शरणं प्रपद्ये॥१॥

यज्ञ आदि जो कर्म और धर्माचरण ज्ञानी करते हैं, वे सब आपकी कृपा से ही सफल होते हैं; क्योंकि आप चेतना के रूप में स्थित हैं। अपने मन में यही सोच कर मैं आपके चरणों में शरण लेता हूँ।

यद्वारुणात्परमिदं जगदम्ब यत्ते
बीजं स्मरेदनुदिनं दहनाधिरूढम्।
मायाङ्कितं तिलकितं तरुणेन्दुबिन्दु-
नादैरमन्दमिह राज्यमसौ भुनक्ति॥२॥

अथवा हे जगन्मातः! जो अरुण वर्ण (हकार) के परे, अग्नि(रेफ) पर आरूढ, माया (ईकार) से युक्त, तिलक (अनुस्वार) से युक्त तथा नवीन चन्द्रमा(˘), बिन्दु (अनुस्वार) तथा नाद से युक्त बीज-मन्त्र 'ह्रीं' का प्रतिदिन ध्यान करते हैं, वे राजा वरुण के राज्य से भी बड़े राज्य का शीघ्रता से भोग करने लगते हैं।

पाथोऽधिनाथतनयापतिरेष शेष-
पर्यङ्कलालितवपुः पुरुषः पुराणः।
त्वन्मोहपाशविवशो जगदम्ब सोऽपि -
व्याघूर्णमाननयनः शयनं चकार।।३।।

हे जगन्मातः समुद्र के स्वामी की पुत्री लक्ष्मी के पति, शेषशायी, पुराण पुरुष भगवान् विष्णु आपके मोह पाश में बँधे हुए निश्चल नयनों से सो गये है।

तत्कौतुकं जननि यस्य जनार्दनस्य
कर्णप्रसूतमलजौ मधुकैटभाख्यौ।
तस्यापि यौ न भवतः सुलभौ निहन्तुं
त्वन्मायया क्वलितौ विलयं गतौ तौ।।४।।

जनार्दन भगवान् विष्णु के कर्णमल के रूप में मधु और कैटभ राक्षस इत्पन्न हुए थे; किन्तु इन्हें मारना विष्णु के लिए सुलभ नहीं हो सका। इन्हें आपने अपनी माया से मार डाला, यह बड़े आश्यर्य की बात है।

यन्माहिषं वपुरपूर्वबलोपपन्नं
यन्नाकनायकपराक्रमजित्वरं च।
यल्लोकशोकजननव्रतबद्धहार्द
तल्लीलयैव दलितं गिरिजे भवत्या।।५।।

हे गिरिजे! अपूर्व पराक्रम वाले जिस महिषासुर ने इन्द्र के पराक्रम को भी अभिभूत कर डाला तथा जिसने तीनों लोकों में शोक उत्पन्न करने की ठान ली थी, इसे आपने खेल खेल में ही खण्ड-खण्ड कर डाला।

यो धूम्रलोचन इति प्रथितः पृथिव्यां
भस्मीबभूव समरे तव हुङ्कृतेन।
सर्वासुरक्षयकरे गिरिराजकन्ये
मन्ये स्वमन्युदहने कृत एष होमः।।६।।

सभी असुरों का संहार करनेवाली हे हिमालयसुते! जो धूम्रलोचन पृथ्वी पर फैला हुआ था वह

युद्ध में आपके हुंकार से ही भस्म हो गया, मानों जैसे आपने अपने क्रोध रूप अनल में ऐसा हवन किया हो।

केषामपि त्रिदशनायकपूर्वकाणां
जेतुं न जातु सुलभाविति चण्डमुण्डौ।
तौ दुर्मदौ तु परमाम्बरतुल्यमूर्ते
मातस्तवासिकुलिशात्पतितौ विशीर्षौ।।७।।

हे परम आकाश के समान स्वरूप वाली भगवती! इन्द्र की सेना के द्वारा जिस चण्ड-मुण्ड का वध सुलभ नहीं हो सका, वे दोनों दुर्मद आपके असि रूपी वज्र के आघात से सिरकटे गिर पड़े।

दौत्येन ते शिव इति प्रथितप्रभावो
देवोऽपि दानवपतेः सदने जगाम।
भूयोऽपि तस्य चरितं प्रथयांचकार
सा त्वं प्रसीद शिवदूति विजृम्भितं ते।।८।।

हे शिवे! आपने दूती का कार्य किया इसलिए प्रभावशाली होकर भगवान् शिव भी दानवपति के घर गये और आपकी जम्भाई ने ही भगवान् शिव के माहात्म्य को वार वार विस्तृत कर दिया। आप हमपर प्रसन्न हों।

चित्रं तदेतदपरैरपि ये न जेयाः
शस्त्राभिघातपतिताद्रुधिरादपर्णे।
भूमौ बभूव रमिताः पतिरक्तबीजा-
स्तेऽपि त्वयैव गगने गिलिताः समस्ताः।।९।।

हे अपर्णे! यह आश्चर्य की बात है कि दूसरे जिन्हें जीत न सके; शस्त्रों के प्रहार से गिरे रक्त से उत्पन्न होकर वे पृथ्वी पर फैल गये। आपने इन सबको आकाश में ही निगल लिया।

आश्चर्यमेतदतुलं यदभूत्सुरारि-
स्त्रैलोक्यवैभवविलुण्ठनपुष्टपाणिः।
शस्त्रैर्निहत्य भुवि शुम्भनिशुम्भसंज्ञौ
नीतौ त्वया जननि तावपि नाकलोकम्।।१०।।

यह भी आश्चर्य की बात है कि देवताओं के शत्रु राक्षस, शुम्भ और निशुम्भ, जो तीनों लोकों को लूटकर बाहुबली हो गये थे, इन्हें आपने अपने शस्त्रों से मारकर इन्हें भी स्वर्गलोक पहुँचा दिया।

त्वत्तेजसि प्रलयकालहुताशनेऽस्मिन्

यस्मिन् प्रयान्ति विलयं भुवनानि सद्यः।
तस्मिन् निपत्य शलभा इव दानवेन्द्रा
भस्मीभवन्ति हि भवानि किमत्र चित्रम्।।११।।

आपके तेज प्रलयकाल की अग्नि के समान हैं, जिसमें ये तीनों लोक तुरत विलीन हो जाते हैं। इसमें फतिंगों की तरह गिरकर यदि ये सभी दानवराज भस्मसात् हो गये तो इसमें भला आश्चर्य की क्या बात है!

तत्किं गृणामि भवतीं भवती प्रताप-
निर्वापनप्रणयिनी प्रणमज्जनेषु।
तत्किं गृणामि भवतीं भवती प्रताप-
संवर्द्धनप्रणयिनी विपदि स्थितेषु।।१२।।

मैं आपसे और क्या विनती करूँ। आपको तो प्रणाम करने बालों के प्रखर तापों को बुझा देना बहुत प्रिय है। और भी मैं आपसे क्या विनती करूँ। विपत्ति में पड़े लोगों का तेज बढ़ाना भी तो आपका प्रिय कार्य है!

वामे करे तदितरे च तथोपदिष्टात्
पात्रं सुधारसयुतं वरमातुलिङ्गम्।
खेटं गदां च दधतीं भवतीं भवानीं
ध्यायन्ति येऽरुणनिभां कृतिनस्त एव।।१३।।

वाम कर में अमृत से युक्त पात्र तथा दक्षिण कर में श्रेष्ठ माला, खेटक और गदा को धारण करनेवाली आपका जो ध्यान करते हैं वे धन्य हैं।

आवाहनं यजनवर्णनमग्निहोत्रं
कर्मार्पणं तव विसर्जनमत्र देवि।
मोहान्मया कृतमिदं सकलापराधं
मातः क्षमस्व वरदे बहिरन्तरस्थे।।१४।।

मेरे अन्तःकरण तथा बाहर रहनेवाली हे मातः! हे वरदे! आवाहन, पूजन, ध्यान, हवन, माहात्म्य का वर्णन तथा विसर्जन जो मैने किया है, इसमें मेरी अज्ञानता के कारण जो अपराध हुए हों इन्हें क्षमा करें।

अन्तस्थिताप्यखिलजन्तुषु तन्तुरूपा
विद्योससे बहिरिहाखिलवस्तुरूपा।
क्व भूरिशब्दरचना वचनातिगासीद्

दीनं जनं जननि मामव निष्प्रपञ्चम्।।१५।।

हे मातः ! आप सभी प्राणियों के अन्तर्जगत् में एक दूसरे से जोड़नेवाली शक्ति के रूप में स्थित होकर भी बाह्य जगत् में समस्त वस्तु के रूप में(पार्थक्य बोध करानेवाली शक्ति के रूप में) प्रभासित हैं। हे माँ! मेरे लिए बार बार शब्दों का प्रयोग भी व्यर्थ है, क्योंकि आप शब्द से परे हैं। मैं अस्फुट हूँ; दीन हूँ। मेरी रक्षा करें।

एतत् पठेदनुदिनं दनुजान्तकारि
चण्डीचरित्रमखिलं भुवि यस्त्रिकालम्।
श्रीमान् सुखी सुविजयी सुभगः क्षमः स्यात्
त्यागी चिरन्तनवपुः कविचक्रवर्ती।।१६।।

राक्षसों का संहार की कथा से युक्त चण्डी के सम्पूर्ण चरित्र का पाठ इस पृथ्वी पर जो प्रातःकाल मध्याह्न तथा सन्ध्याकाल में करते हैं, वे लक्ष्मीवान्, सुखी, विजयी, सौभाग्य से युक्त, समर्थ, त्यागी, दीर्धजीवी तथा कवियों में चक्रवर्ती होते हैं।

श्रीसिद्धनाथापरनामधेयः श्रीशम्भुनाथो भुवनैकनाथः।
तस्य प्रसादात् सुलभागमश्रीः पृथ्वीधरः स्तोत्रमिदं चकार।।

श्रीसिद्धिनाथ, जिनका दूसरा नाम श्री शम्भुनाथ भी है, वे इस संसार में महादेव के समान हैं। इनकी कृपा से जिस पृथ्वीधर ने आगमशास्त्र (तन्त्र-शास्त्र) का ज्ञान प्राप्त किया है, इस पृथ्वीधर ने इस स्तोत्र की रचना की।

●

कुमारी पूजन विधि

(देवीपूजन में कुमारी प्रत्यक्ष देवी मानी गयी है अत: भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से कुमारी-की पूजा प्राचीन काल से की जाती रही है। यहाँ जिज्ञासु जनों के लिए कुमारी-पूजन का शास्त्रीय-विधान दिया जा रहा है। इस सन्दर्भ में मुझे तिरहुता लिपि में लिखी हुई लगभग 200 वर्ष प्राचीन एक पाण्डुलिपि मिली, जिसमें विभिन्न उम्र की कन्याओं का नामकरण, पूजा का फल तथा उसके लिए मन्त्र का विधान किया गया है। ये श्लोक कहाँ से संकलित हैं, यह मैं नहीं जानता किन्तु इसकी प्रामाणिकता में सन्देह नहीं। इसके अतिरिक्त विद्यापति कृत दुर्गाभक्तितरंगिणी से कुमारी-पूजन-विधि यहाँ संकलित है।)

एकवर्षा न कर्तव्या कन्या पूजाविधौ नृप।
अरसज्ञा तु भोगानां गन्धादीनां तु बालिका॥
कुमारिका च सा प्रोक्ता द्विवर्षा या भवेदिह।
त्रिमूर्तिनी त्रिवर्षा च कल्याणी चतुरब्दिका॥
रोहिणी पञ्चवर्षा च कालिका षष्ठवार्षिकी।
चण्डिका सप्तवर्षा च अष्टवर्षा च शाम्भवी॥
नववर्षा भवेद् दुर्गा सुभद्रा दशवार्षिकी।
तत ऊर्ध्वं न कर्त्तव्या सर्वकार्यविगर्हिता॥
एभिश्च नामभिः पूजा कर्तव्या विधिसंयुता।
तासां फलानि वक्ष्यामि नवानां पूजने सदा॥
कुमारी पूजिता कुर्याद् दुःखदारिद्र्यनाशनम्।
शत्रुक्षयं धनायुष्यं बलं वृद्धिं करोति वै॥
त्रिमूर्तिपूजनादायुः त्रिवर्गस्य फलं भवे।
धनधान्यागमश्चैव पुत्रपौत्रादिवृद्धि च॥
विद्यार्थी विजयार्थी च राज्यार्थी यशपार्थिवः।
सुखार्थी पूजयेन्नूनं कल्याणीं सर्वकामदाम्॥
रोहिणीं रोगनाशाय पूजयेद् विधिवन्नरः।
कालिकां शत्रुनाशार्थं पूजयेद् विधिपूर्वकम्॥
ऐश्वर्यधर्मकामाय चण्डिकां परिपूजयेत्।
पूजयेच्छाम्भवीं नित्यं नृपसम्मोहनाय च॥
दुःखदारिद्र्यनाशाय सङ्ग्रामविजयाय च।
क्रूरशत्रुविनाशार्थं तथोग्रकर्मसाधने॥
दुर्गां च पूजयेद् भक्त्या परलोकसुखाय च।
वाञ्छितार्थस्य सिद्ध्यर्थं सुभद्रां पूजयेत् सदा॥
रोहिणीं रोगनाशाय पूजयेद्विधिवन्नरः।
श्रीरसीति च मन्त्रेण पूजयेद् भक्तितत्परः॥
श्रीसूक्तमन्त्रैरथवा बीजमन्त्रैरथापि वा।
कुमारस्य च तत्त्वानि याम्य इत्यपि लीलया॥
कादीनपि वदेवाँस्तु कुमारीं पूजयाम्यहम्।
सत्त्वादिभिः त्रिमूर्तायाः तैर्हीना सौम्यरूपिणी॥
त्रिकालव्यापिनीं शक्तिं त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम्।
कल्याणकारिणीं नित्यं भक्तानां पूजितानिशम्॥

पूजयामि च तां भक्त्या कल्याणीं सर्वकामदाम्।
रोहयति च बीजानि पूर्व्वजन्माञ्चितानि वै॥
या देवी सर्वभूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम्।
कालिका लयते सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्॥
कल्पान्तसमये या तां कालिकां पूजयाम्यहम्।
चण्डिकां चण्डरूपाञ्च चण्डमुण्डविनाशिनीम्॥
ताञ्चण्डपापहरिणीं चण्डिकां पूजयाम्यहम्।
अकाराणां समुत्पत्तिर्या भूतैः परिकीर्तिता॥
यस्यास्तां सुखदां देवीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम्।
दुर्गा चायाति भक्ते या सदा दुर्गतिनाशिनी॥
दुर्गया सर्वदेवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम्।
सुभद्राणि च भक्तानां शरणं तु पूजिता सदा॥
अभद्रनाशिनी देवी सुभद्रां पूजयाम्यहम्।
एभिर्म्मन्त्रै पूजनीया नवधा कन्यकास्त्विमाः॥
वस्त्रालङ्करणैर्म्माल्यैर्गन्धैरुच्चावचैरपि ।

उपर्युक्त शास्त्र के अनुसार कुमारी की उम्र, नाम, पूजा का फल एवं मन्त्र इस प्रकार हैं-

उम -1 वर्ष, पूजन योग्य नहीं

उम्र- 2 वर्ष, नाम- **कुमारिका**, फल- दुःख, दरिद्रता का नाश, शत्रुनाश, धन, आयु, बल, बृद्धि। मन्त्र- **कुमारिकायै नमः।**

उम्र- 3 वर्ष, नाम- **त्रिमूर्ति,** फल- आयु, स्वर्ग- सुख धन-धान्य की वृद्धि, पुत्र-पौत्रादि। मन्त्र- **त्रिमूर्त्त्यै नमः।**

उम्र- 4 वर्ष, नाम- **कल्याणी**, फल- विद्या प्राप्ति, विजय, राज्य-लाभ, यशोलाभ, सुख। मन्त्र- **कल्याण्यै नमः।**

उम्र- 5 वर्ष, नाम- **रोहिणी**, फल- रोगनाश। मन्त्र- **रोहिण्यै नमः।**

उम्र- 6 वर्ष, नाम- **कालिका**, फल- शत्रु-नाश। मन्त्र- **कालिकायै नमः।**

उम्र- 7 वर्ष, नाम- **चण्डिका,** फल- ऐश्वर्य, धर्म। मन्त्र- **चण्डिकायै नमः।**

उम्र- 8 वर्ष, नाम- **शाम्भवी**, फल- राज-सम्मोहन, दुःख दारिद्र्यनाश, युद्ध में विजय, क्रूरशत्रु का विनाश, अभिचार कर्म में सिद्धि। मन्त्र- **शाम्भव्यै नमः।**

उम्र- 9 वर्ष, नाम- **दुर्गा,** फल- स्वर्ग लोक का सुख। मन्त्र- **दुर्गायै नमः।**

उम्र- 10 वर्ष, नाम- **सुभद्रा,** फल- मनोरथ की प्राप्ति। मन्त्र- **सुभद्रायै नमः।**

इससे अधिक उम्र की कुमारी पूजा योग्य नहीं होती है।

विद्यापति-कृत दुर्गा-भक्तितरंगिणी में कुमारी-पूजा की विधि

अथ कुमारीणां पूजाविधि:

तत्र कुशत्रयतिलजलान्यादाय। ओं अद्याश्विनशुक्लाष्टम्यां महानवम्यां वा देवीप्रसादविविधमनोभीष्टकामावाप्तिराज्यकरणतदुत्तरदेवीलोकगमनकाम एतास्तिस्त्र: कुमारीरहंपूजयिष्ये इति संकल्प्य कुमारीणाञ्चरणक्षालनं विधाय गोमयोपलिप्तभूभागे रम्ये शुभासनेषु तिस्रो ब्राह्मणकुमारी: प्राङ्मुखीरुपवेश्यार्घमनोज्ञगन्धपुष्पवासोमाल्यविभूषणै: सविधि समभ्यर्च्य खाण्डमोदक-गुडघृतदधिदुग्धप्रभृतिमनोज्ञाहारै: शनै: शनैर्य्यथासुखं भोजयेत्। अपेक्षितमन्नपानादिकञ्च दद्यात् ततस्तासामाचान्तानां करेष्वक्षतान्दत्वा क्षमध्वमित्युक्त्वा ताभ्योऽक्षतान् शिरसा प्रगृह्य प्रणिपत्य विसर्ज्जयेत्। इति कुमारीपूजाविधि:। एवं ब्राह्मणान्प्रमदाजनान् विविधभक्ष्यभोज्यादिदानेन तोषयेत्।

अर्थात् आश्विन शुक्ल अष्टमी तथा नवमी तिथि में शास्त्रोक्त-विधान के अनुसार कुमार-पूजन की कर्त्तव्यता सूचित होती है। सर्वप्रथम कुशत्रय तिल-जल हाथ में लेकर पूजक को मूलोक्त वाक्य के अनुसार कुमारी-पूजन का संकल्प करना चाहिए। तत:पर, निमन्त्रित तीन विप्र-कुमारियों का चरण प्रक्षालन-पूर्वक उन्हें गोमय से उपलिप्त भूभाग पर आस्तीर्ण शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख स्थिति में बैठा कर मनोहर गन्ध-पुष्प, वसन, माल्य एवं आभूषणों से विधिपूर्वक उनका पूजन किया जाना चाहिए। तदनन्तर, गुड़, मोदक, घृत, दधि, दुग्ध, मधु प्रभृति रुचिकर आहारों से उन्हें शनै:-शनै: भोजन कराया जाना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार उन्हें अपेक्षित अन्न-पानादि प्रदान किया जाना चाहिए। तत्पश्चात् जब वे भोजन कर उठ जावें तो उन्हें आचमन करा कर उनके हाथों में अक्षत देकर "पूजक क्षमा करो"- ऐसा उन्हें कहे और उनसे अपने मस्तक पर अक्षतों को धारण कर प्रणाम-पुरस्सर उन्हें विदा करे। इसी प्रकार पूजक को चाहिए कि वह ब्राह्मणों और सधवा स्त्रियों को भी विविध भक्ष्य-भोज्यादि के सादर प्रदान के द्वारा परितोषित करे। (प्रो. काशीनाथ मिश्र द्वारा अनूदित एवं कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' से साभार)

जाति निर्णय- क्षत्रिय-यश, वैश्य-धन लाभ, शूद्र-संतान प्राप्ति ब्राह्मण-सर्वसिद्धि (विप्रां सर्वेष्टसंसिद्ध्यै यशसे क्षत्रियोद्भवाम्। वैश्यजां धनलाभाय पुत्राप्त्यै शूद्रजां यजेत् :-नागोजीभट्टीस्थ: प्रयोगविधि:)

●